जन्म शताब्दी पुस्तकमाला–४१

लोकसेवा की प्रवृत्तियों के केंद्र हों मंदिर

(प्रवचन)

– श्रीराम शर्मा आचार्य

लोकसेवा की प्रवृत्तियों के केंद्र हों मंदिर

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

मित्रो ! मंदिरों की इमारतों को अगर इस ढंग से बनाया गया होता कि जिनमें मंदिर के साथ-साथ पाठशाला, प्रौढ़ पाठशाला, संगीत विद्यालय, वाचनालय और कथा-कीर्तन का कक्ष भी बना होता, उसके आस-पास व्यायामशाला भी होती और थोड़ी सी जगह में चिकित्सालय का भी प्रबंध होता, बच्चों के खेलने की भी जगह होती। इस तरीके से लोकमंगल की, लोकसेवा की अनेक प्रवृत्तियों का केंद्र अगर वहाँ बना दिया गया होता और वहीं एक जगह भगवान की भी स्थापना होती तो जो धन मंदिरों में चढ़ाया जाता है, उसका ठीक तरीके से उपयोग होता। ऐसी स्थिति में मंदिरों के द्वारा कितना बड़ा लाभ होता।

साथियो! आपने गिरजाघरों को देखा है। गिरजाघरों में भगवान के लिए कोई गुंजाइश नहीं है क्या? वहाँ कहीं-कहीं मरियम की मूर्ति लगी रहती है, तो कहीं-कहीं ईसा की प्रतिमा लगी रहती है। एक छोटा सा प्रार्थना कक्ष होता है। कहीं इसमें अस्पताल या दवाखाने वाला हिस्सा होता है। कहीं पादरियों के रहने का हिस्सा होता है। कहीं एक छोटा सा दफ्तर बना होता है। इस तरह भगवान का एक छोटा सा केंद्र बनाने के बाद में बाकी सारी की सारी इमारत, सारा स्थान लोकमंगल के लिए होता है। पहले भारतवर्ष में भी ऐसा ही किया जाता था और किया भी जाना चाहिए, लेकिन आज तो मंदिरों की दशा देखकर हँसी आती है और क्रोध भी। आज मंदिरों का सारा का सारा धन कुछ चंद लोगों के निहित स्वार्थ के लिए खरच हो जाता है। जो कुछ भी चढ़ावा या दान आया, कुछ निहित स्वार्थ के लिए मठाधीशों और मंदिरों के स्वामी और दूसरे महंतों के पेट में चला गया।

अनाचार एवं अज्ञान के केंद्र हैं ये

मित्रो! वह अनावश्यक धन, हराम का धन जब उन लोगों के पास आया तो उन्होंने क्या-क्या किया? आप नहीं जानते, मैं जानता हूँ। पंडा-पुजारियों, महंतों और मठाधीशों की हकीकत मुझे मालूम है, आपको नहीं मालूम है। आप तो केवल उनकी बाहर की शक्ल जानते हैं। मुझे उनके पास रहने का मौका मिला है। मैं जानता हूँ कि समाज में खराब से खराब किस्म के तबके अगर हैं तो उनमें से एक तबका इन लोगों का भी है, जो धर्म का कलेवर या धर्म का दुपट्टा ओढ़े हुए हैं। धर्म का झंडा गाड़े हुए हैं और धर्म का तिलक लगाए हुए हैं। धर्म की पोशाक और धर्म का बाना पहने हुए बैठे हैं। ये क्या-क्या अनाचार फैलाते हैं और क्या-क्या दुनिया में खुराफातें पैदा करते हैं, आप जरा भी नहीं जानते। इन लोगों का पोषण करने के लिए, इनके निहित स्वार्थों को पूरा करने के लिए आज का धर्मतंत्र है—मंदिर।

तो क्या मंदिर सिर्फ इसी काम के लिए हैं? क्या इन परिस्थितियों को बदला नहीं जाना चाहिए? हाँ, अगर हमको समाज में ढोंग, अनाचार और अज्ञान फैलाना हो तो मंदिरों का यही रूप बना रहने देना चाहिए। अगर हमारा यह खयाल है कि जनता का इतना धन, जनता की इतनी श्रद्धा, जनता का इतना पैसा—इन सब चीजों का ठीक तरीके से उपयोग किया जाए तो आज के जो मंदिर हैं, उनकी व्यवस्था पर नए ढंग से विचार करना पड़ेगा। जिन लोगों के हाथ में उनका नियंत्रण है, उनको समझाना पड़ेगा और कहना पड़ेगा कि जनता की उपयोगिता के लिए आप इनका इस्तेमाल क्यों नहीं करते? ट्रस्टियों को समझाया जाना चाहिए। अगर उनकी समझ में यह बात आ जाए कि मंदिर में जितना धन लगा हुआ है, इसमें से थोड़े पैसे से भगवान की पूजा आसानी से की जा सकती है। एक पुजारी ने आधा घंटे सुबह और आधा घंटे शाम को पूजा कर ली। एक घंटे के बाद तेईस घंटे बच जाते हैं। नहीं साहब! तेईस घंटे

पुजारी पंखा लिए खड़े रहेंगे। जब भगवान सो जाएँगे तो वे वहाँ से हटेंगे और जब भगवान उठ जाएँगे तो फिर पंखा डुलाते रहेंगे, यह कोई तरीका है?

जनश्रद्धा का दुरुपयोग न हो

मित्रो! हम अपने ढंग से भगवान को बेकार आदमी जैसा बनाते हैं। अगर भगवान सोया करेंगे तो सूरज-चाँद कैसे उगेगा? हवाएँ कैसे चलेंगी? जीव-जंतु, पेड़-पौधे कैसे पैदा हो जाएँगे? भगवान सो नहीं सकता, हवा सो नहीं सकती, गरमी सो नहीं सकती। जो इस तरह की विश्वव्यापी चेतनाएँ हैं, उनको सोने से क्या मतलब! इसलिए सोने-जागने वाला जो कृत्य है, वह बच्चों का मनबहलाव जैसा है। मनबहलाव का थोड़ा सा काम रखा जाए तो क्या हर्ज है! लेकिन उस कार्य के लिए जो धन, पैसा, श्रम लगा हुआ है, जो व्यक्ति लगे हुए हैं, उन सभी को लोकमंगल के लिए खरच किया जाना चाहिए। मंदिरों के जो कमेटी वाले हैं, महंत हैं, उनको विवेकशील लोगों की एक कमेटी बनाकर समझाया

जाना चाहिए। अगर वे समझते नहीं हैं तो उन्हें मजबूर किया जाना चाहिए कि मंदिर में धन तो आपने लगाया है, पर अब वह जनता का है। मंदिर का ट्रस्ट बनाने का मतलब है कि उसका स्वामित्व जनता के हाथ में चला जाता है। मंदिरों के ये न्यासी प्रबंधक होते हैं, स्वामी नहीं होते। वह संपत्ति जनता की मानी जाती है। जो देवालय बन गया, उसकी स्वामी जनता हो जाती है और उसका हक है कि उन लोगों को मजबूर करे और कहे कि आप इस तरीके से इस धन का अपव्यय नहीं कर सकते। जनता की श्रद्धा का गलत उपयोग नहीं किया जा सकता।

मित्रो! अपने देश में अरबों रुपया मंदिरों के नाम पर लगा हुआ है। मैं इसको अपव्यय ही नहीं, दुरुपयोग कहता हूँ और यह कहता हूँ कि उन पुजारियों को, महंतों को यह कहा जाना चाहिए कि आप अगर अपनी श्रद्धा को कायम रखना चाहते हैं, जनता के मन पर अपनी छाप को कायम रखना चाहते हैं तो

आप लोकसेवी के तरीके से जिएँ और इस मंदिर को लोकसेवा का केंद्र बनाएँ। न तो आप भगवान के वकील हैं, न एजेंट हैं और न ही नुमाइंदे हैं। आप हमारे जैसे पुजारी और एक सामान्य व्यक्ति हैं।

प्रगतिशील मंदिरों की आवश्यकता

मित्रो! अब समय आ गया है, जबकि मंदिरों का स्वरूप बदल दिया जाए। नमूने के लिए अब ऐसे मंदिर बनाए जा सकते हैं, जिनमें प्रयोगशाला के तरीके से लोग देख पाएँ कि मंदिरों का सही इस्तेमाल क्या हो सकता है और क्या होना चाहिए? हमने गायत्री तपोभूमि का मंदिर लोगों के सामने एक नमूना पेश करने की खातिर बनाया है। यों तो अपने देश में इतने सारे मंदिर हैं। भगवान तो एक ही है। उनको ही शंकर कह दीजिए, गणेश कह दीजिए, हनुमान जी कह दीजिए। अनेक भगवान नहीं हो सकते, हाँ, उनके माम अनेक हो सकते हैं। मंदिर में मूर्ति रख देना ही काफी नहीं है, वरन मूर्ति के साथ-साथ उन भगवान से संबंधित वृत्तियों को आगे बढ़ाया जाना

और फैलाया जाना भी आवश्यक है। अपने यहाँ यही तो होता है। कितने कार्य होते हैं—विद्यालय वहाँ चलता है, प्रकाशन वहाँ होता है, देशभर के लिए कार्यकर्त्ता वहाँ से भेजे जाते हैं और न जाने क्या-क्या किया जाता है। लेकिन उस मंदिर तक ही हम सीमाबद्ध नहीं हैं। यदि सीमाबद्ध हो जाते तो उसको प्रगतिशील मंदिर नहीं कहा जा सकता था। अब हमको प्रगतिशील मंदिरों की स्थापना की आवश्यकता है। समाज का नया निर्माण करने के लिए नए-नए रचनात्मक केंद्र खोले जाने चाहिए।

अध्यात्म-चेतना के विस्तार में नियोजन हो

साथियो! मंदिरों के नाम पर करोड़ों-अरबों रुपए की संपत्ति को ऐसे ही पड़ा रहने दें, यह कैसे हो सकता है! इस संपत्ति को ठीक तरीके से इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इसके लिए समझदार लोगों को, धार्मिक लोगों को आगे आना चाहिए और इस आवश्यकता को महसूस करना चाहिए कि यदि धर्म को जिंदा रहना है तो वह ढोंग के रूप में नहीं

जिएगा। वह केवल कर्मकांड के रूप में जिंदा नहीं रहेगा। बेशक धर्म के साथ में कर्मकांडरूपी कलेवर जिंदा रहे, लेकिन कर्मकांडों के साथ-साथ उन सत्प्रवृत्तियों को भी जीवित रखा जाना चाहिए, जिनसे लोकमंगल की और समाज की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। धर्म केवल कर्मकांड नहीं है। धर्म केवल आडंबर नहीं है। धर्म केवल पूजा-पाठ की प्रक्रिया नहीं है, वरन इस पूजा-पाठ की प्रक्रिया और धार्मिक क्रियाकृत्यों के पीछे और साथ-साथ में एक महती आवश्यकता जुड़ी हुई है कि हम व्यक्ति के अंतरंग को, उसकी भावनाओं को कैसे ऊँचा उठाएँ? समाज के अंदर फैली हुई धार्मिक वृत्तियों को कैसे बढ़ाएँ? ये सारे के सारे क्रिया-कलाप जिस माध्यम से और जिस आधार पर पूरे किए जा सकते हैं, उसके लिए कोई केंद्र या एक स्थान होना ही चाहिए। उस जगह हमारे मंदिर ही हो सकते हैं।

इन मंदिरों में पुजारी के रूप में सिर्फ लोकसेवियों की नियुक्ति हो, जिनके मन में समाज के लिए दरद

है और जो समाज को ऊँचा उठाना चाहते हैं। जो मनुष्य के भीतर धर्मवृत्तियाँ पैदा करना चाहते हैं, उसी तरह के पुजारी वहाँ रहें। वे अपने पूजा-पाठ का एक दो घंटा पूरा करने के बाद, अपने गुजारे की व्यवस्था करने के बाद जो समय उनके पास बच जाता है, उसका इस्तेमाल इस तरह से करें, जिससे कि हमारी सामाजिक और राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत चरित्र की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। मंदिरों में जहाँ दूसरी तरह के खरच होते हैं—कभी बँगले बनते हैं, कभी उत्सव होते हैं, कभी झाँकी बनती है, कभी क्या बनता है और उसी में लाखों रुपए खरच हो जाता है। उन सारे के सारे क्रिया-कलापों में आंशिक किफायत की जा सकती है और इससे जो पैसा बचता है, उसको लोकमंगल की अनेक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है और करना भी चाहिए। इस तरीके से धन की आवश्यकता, इमारतों की आवश्यकता, जनसहयोग की आवश्यकता मंदिरों के आधार पर ठीक तरीके से पूरी की जा सकती है।

यह सोच भी बदलें

मित्रो! जो व्यक्ति ऐसा खयाल करते हैं कि भगवान निराकार है, उसकी मूर्तिपूजा की जरूरत नहीं है, उन लोगों से भी मेरी यह प्रार्थना है कि वे उस शक्तिशाली माध्यम की उपेक्षा नहीं करें। ये मंदिर हिंदू धर्म की श्रद्धा के केंद्र हैं। उनको अब दिशा दी जानी चाहिए, नया मोड़ दिया जाना चाहिए। अब उनका विरोध करने की जरूरत नहीं रही। अब उनका खंडन करने की जरूरत नहीं रही। किसी जमाने में ऐसा रहा होगा कि लोगों के मनों में मूर्तिपूजा की बात, जो गहराई तक जम गई थी, उसको कमजोर करने के लिए संभव है, किसी ने मंदिर का विरोध किया हो और यह कहा हो कि इसमें मूर्तिपूजा की जरूरत नहीं है। उस आधार पर धन खरच करने की जरूरत नहीं है। हो सकता है, किसी जमाने में धर्मसुधारकों ने अपनी बात समय के अनुरूप कही हो, लेकिन मैं अब यह कहता हूँ कि हिंदुस्तान में गाँव-गाँव में छोटे-बड़े मंदिर बने हुए हैं। उनको

आप उखाड़िएगा क्या? भगवान राम और भगवान श्रीकृष्ण, जिनको हमारी असंख्य जनता श्रद्धापूर्वक प्रणाम करती है, क्या उनका आप विरोध करेंगे? निंदा करेंगे क्या? नहीं, अब यह गलती नहीं करनी चाहिए।

साथियो! ठीक है, जैसा भी अब तक चला आ रहा है, उसे अब हमें सुधार की दिशा में मोड़ देना चाहिए। यह एक बहुत बड़ा काम है। विरोध करके नई चीज को खड़ा करना कितना मुश्किल है? एक चीज को गिराया जाए और फिर एक नई इमारत बनाई जाए, इसकी अपेक्षा यह क्या बुरा है कि जो बनी-बनाई इमारत है, उसको हम ठीक तरीके से इस्तेमाल करना सीख लें और उसी को काम में लाएँ। मंदिरों को अगर ठीक तरीके से काम में लाया जा सकता हो और उनमें लगी पूँजी को ठीक तरीके से इस्तेमाल किया जाता रहा हो और इन दोनों का उपयोग लोकमंगल के लिए किया जाता रहा हो। उनमें ऐसे पुजारियों की, कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति

की जा सकती हो, जो अपना एक-दो घंटे का समय पूजा-पाठ में लगाने के बाद बचा हुआ सारा समय समाज को ऊँचा उठाने में लगाएँ, तो मैं यह विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि सरकार और दूसरी संस्थाओं के द्वारा जो लंबे-लंबे प्लान, योजनाएँ बनती हैं, धन लगाती हैं, कार्यकर्त्ता नियुक्त करती हैं, फिर भी सारी योजनाएँ असफल हो जाती हैं, उसकी तुलना में यह योजना इतनी बड़ी, इतनी महत्त्वपूर्ण, इतनी मार्मिक और सार्थक है कि हम राष्ट्र को पुनः उसके शिखर पर पहुँचा सकते हैं।

राष्ट्र का कायाकल्प कर सकते हैं ये देवालय

इसके लिए हमें केवल मंदिरों की दिशाएँ मोड़ने की जरूरत है। लोगों को समझाने की जरूरत है, प्रचार करने की जरूरत है, धमकाने की जरूरत है। अगर ये काबू में न आते हों तो घिराव करने से लेकर बहिष्कार करने तक की जरूरत है और यह समझाने की जरूरत है कि इस धन का और इमारतों

का हम अपव्यय नहीं होने देंगे। मंदिरों को हम अंधश्रद्धा का केंद्र नहीं बनने देंगे। हम धर्मभीरुता का पोषण करने वाले केंद्र के रूप में नहीं, वरन इन्हें धर्म की स्थापना का केंद्र बनाएँगे। यदि इन मंदिरों को धर्म की स्थापना का केंद्र बनाया जा सका तो राष्ट्र की महती आवश्यकता पूरी की जा सकती है। तब नया युग लाने में, नया समाज बनाने में और समाज की विकृतियों को दूर करने में और एक समर्थ राष्ट्र, समर्थ समाज बनाने के लिए इतने बड़े साधन हमारे हाथ सहज ही लग सकते हैं। इन बने-बनाए साधनों को विवेकशीलों को अपने अधिकार में, कब्जे में लेना ही चाहिए और उनको वह दिशा देनी चाहिए, जिससे कि भगवान वास्तव में प्रसन्न हों।

भगवान की जो सद्वृत्तियाँ इस विश्व में फैली हुई हैं, जिनसे कि शांति आती है और धार्मिक भावना की वृद्धि होती है और समाज समृद्ध होता है, उन भावनाओं को आगे बढ़ाने के लिए मंदिरों को केंद्र बनाया ही जाना चाहिए, ताकि वास्तविक भगवान

अपनी वास्तविक पूजा को देखकर प्रसन्न हो जाए और भक्ति करने, पूजा-पाठ करने का उद्देश्य लोगों को प्राप्त हो सके और लोग उसका समुचित फायदा उठा सकें। यह करने की बहुत अधिक आवश्यकता है और हमको करना चाहिए। मंदिरों को जनजागरण का केंद्र बनाया जाना चाहिए, उनका कायाकल्प किया जाना चाहिए। इतना करना यदि संभव हो गया तो समझना चाहिए कि हमने लोकमंगल के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी मंजिल पूरी कर ली और बहुत बड़े साधनों को हमने अपने आप में इकट्ठा कर लिया।

मंदिर जन-जागरण के केंद्र बनें

भारतवर्ष में लगभग ६ लाख मंदिर हैं, जिनमें पुजारी नियत हैं और नियमित रूप से सेवा-पूजा की व्यवस्था होती है। इनमें से सैकड़ों ऐसे हैं जिनमें दर्जनों कर्मचारी विभिन्न प्रयोजनों के लिए रहते हैं, पर हम न्यूनतम औसत निकालने के लिए यह मान लेते हैं कि हर मंदिर के पीछे केवल एक कर्मचारी नियुक्त है। यद्यपि हजारों ही मंदिर ऐसे हैं जिनका

भोग-प्रसाद, उत्कृष्ट शृंगार, सफाई, रोशनी, मरम्मत आदि का खरच लाखों रुपया मासिक है, पर न्यूनतम औसत भोग-प्रसाद, दीपक, मरम्मत तथा पुजारी का वेतन आदि कुल व्यय का अनुमान लगा लेना चाहिए कि ६ लाख मंदिरों का खरच इस हिसाब से कितने रुपए वार्षिक होगा ?

विशाल जनशक्ति और विपुल धनशक्ति

भारतवर्ष में ५६७१६९ गाँव और २६१० शहर हैं। कुल मिलाकर इनकी संख्या ६ लाख होती है, इनमें हर जगह एक मंदिर का हिसाब तो मानना ही चाहिए। मामूली गाँवों और कसबों में कई-कई संप्रदाय के कई देवताओं के कई-कई मंदिर होते हैं। बड़े शहरों में तो उनकी संख्या सैकड़ों होती है, फिर भी औसतन हर गाँव के पीछे एक का औसत मान लिया जाए तो इनकी संख्या भी ६ लाख हो जाती है।

हर मंदिर के पीछे कई-कई कर्मचारी होते हैं, पुजारी, महंत, मुनीम, चौकीदार, माली आदि। कितने ही बड़े मंदिरों में तो सैकड़ों कर्मचारी काम करते

हैं। दो-दो तीन-तीन तो हजारों में होंगे, फिर भी न्यूनतम एक पुजारी हर मंदिर के पीछे मानना ही होगा। इस प्रकार ६ लाख मंदिरों में ६ लाख पुजारी हो गए। ये सब गृहस्थ होते हैं। अन्य उद्योगों में लगे हुए व्यक्तियों के घर वाले भी अपने काम-धंधों में सहायक होते हैं। किसान, जुलाहे, धोबी, पशु-पालक आदि प्राय: सभी उद्योगों में उनके परिवार का भी श्रम-सहयोग रहता है। पुजारियों के परिवार में चार-छह व्यक्ति हो सकते हैं, पर कम से कम एक व्यक्ति तो ऐसा मानना ही चाहिए जो उनके कार्य में थोड़ा सहयोग दे सके। इस प्रकार ६ लाख वे सहायक यों हो जाते हैं। यदि परिवार का व्यक्ति सहायता न भी करे तो भी यह मानना होगा कि बड़े मंदिर में एक ही व्यक्ति नहीं कई-कई भी होते हैं। ६ लाख मंदिरों के पीछे १२ लाख व्यक्तियों का श्रम लग जाता है।

यों साधारण श्रमिकों की अपेक्षा भोजन, वस्त्र, दक्षिणा, वेतन, मुफ्त निवास आदि का प्रबंध रहने

से पुजारी का खरच कहीं अधिक होता है, पर औसतन खरच का हिसाब लगाना चाहिए। इसमें पूजा–उपकरण, भोग–प्रसाद, पुजारी का वेतन, फूल, दीपक आदि मान लिया जाए तो यह रकम कितनी होगी? ६ लाख मंदिरों में कितना वार्षिक खरच बैठता है। वस्तुतः कई गुना अधिक होता होगा, क्योंकि पूरे देश के मंदिरों में से कई का खरच लाखों रुपया महीना है। ऐसे–ऐसे हजारों मंदिर देश में मौजूद हैं। ६ लाख मंदिरों की इमारती लागत कितनी होती है?

मंदिरों का खरच चलाने के लिए स्थायी फंड सर्वत्र हैं। किसी मंदिर से कृषि लगी हुई है, किसी से मकान–जायदाद, किसी के पास नकदी के रूप में स्थिर कोष है। यह पूँजी कितनी होगी? यह रकम भी निर्माण पूँजी के बराबर ही हो जाती है। मंदिरों का इमारती मूल्य और स्थिर पूँजी दोनों को मिलाकर कितना धन हो जाता है? यदि इसका हिसाब लगाया जाए तो धनराशि खरबों में जाएगी।

यह सामर्थ्य व्यर्थ नष्ट न हो

इतनी विशाल जनशक्ति और इतनी विशाल धनशक्ति का यदि राष्ट्रीय पुनरुत्थान में ठीक तरह उपयोग हो तो उसका परिणाम जादू जैसा हो सकता है। मंदिरों की शक्ति भौतिक विकास में खरच नहीं की जानी चाहिए, न की जाए, पर बौद्धिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक एवं नैतिक कार्यक्रम भी क्या कम हैं? देश को इन दिशाओं में भी अभी बहुत काम करना है। देश जिस आर्थिक एवं भौतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है उससे अधिक भावनात्मक दृष्टि से पीछे रह गया है। शिक्षा का घोर अभाव है, मनुष्य के बौद्धिक दिमाग से कम से कम साक्षरता की आवश्यकता तो पूरी करनी ही होगी। सामाजिक कुरीतियों ने हमें नैतिक दृष्टि से खोखला एवं दिवालिया बनाकर रख दिया है। स्वास्थ्य जर्जर हो रहे हैं, भावनाओं में न उल्लास है और न उत्साह। आर्थिक आडंबर तो जाल-जंजाल की तरह फैलता जा रहा है, पर धार्मिक कर्त्तव्यों से विरक्ति

दिन-दिन बढ़ रही है। हमारी मानसिक स्थिति ही नहीं, सामाजिक स्थिति हर दिशा में जर्जरित हो रही है। इसके सुधार एवं पुनर्निर्माण में, मंदिरों में लगी हुई विशाल जनशक्ति को यदि सुनियोजित किया जा सके तो हमारा कायाकल्प ही हो सकता है। भौतिक विकास की योजनाएँ सरकार बनाए, यह कार्य उसका है। पर मानसिक एवं भावनात्मक निर्माण तो धर्मतंत्र के माध्यम से ही हो सकता है। भौतिक विकास तभी पूर्ण होगा, जब लोग भावनात्मक दृष्टि से परिष्कृत हो चलें। यदि भाग्यवाद, पलायनवाद, आलस्य, अकर्मण्यता, अनुत्साह, संकीर्णता, स्वार्थपरता, सामाजिक असहयोग जैसे दुर्गुणों से मनोभूमि ग्रसित बनी रही तो भौतिक उन्नति के सारे प्रयास निष्फल चले जाएँगे। जो कमाई बढ़ेगी वह दुर्गुणों में खरच कर दी जाएगी, फिर कैसे गरीबी दूर होगी? असंयमी लोग दवा-दारू का अधिक प्रबंध होने पर भी रोगग्रस्त रहेंगे, इसलिए राष्ट्रीय विकास के लिए जहाँ भौतिक प्रयत्नों की

आवश्यकता है, वहाँ यह भी कम आवश्यक नहीं कि जनमानस का भावनात्मक परिष्कार किया जाए और यह प्रयोजन सरकार नहीं वरन धर्म संस्थाएँ ही पूर्ण कर सकती हैं। मंदिर संस्थाओं में लगी हुई जनशक्ति और धनशक्ति को यदि इस कार्य में लगाया जा सके तो महत्त्वपूर्ण आवश्यकता सहज ही पूरी हो सकती है।

मंदिर और उनका मूल प्रयोजन

मंदिरों के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य जनमानस में धार्मिकता को, निष्ठा को जमाने और बढ़ाने में योग देना ही था। ईश्वर भक्ति का मतलब इतना ही नहीं है कि कुछ मंत्र जप लिए जाएँ, कुछ पाठ कर लिया जाए, देवदर्शन कर लिया जाए और प्रतिमाओं को भोग-प्रसाद चढ़ाकर कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली जाए और इतने से ही यह आशा लगा ली जाए कि यह थोड़ा सा क्रियाकृत्य ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। ईश्वर भक्ति का मतलब अपने अंदर भरे हुए कुविचार

और कुकर्मों का, दुर्भावों और दुष्प्रवृत्तियों का शमन करना है। यह जितनी ही बढ़ती है उतना ही हमारा आत्मिक स्तर बढ़ता है और इस बढ़ोत्तरी के अनुपात से ही ईश्वर के निकट पहुँच सकना संभव होता है। सुसंस्कृत, विकसित, व्यवस्थित होना ही ईश्वर की कृपा–अनुकंपा का एकमात्र चिह्न है। विवेक के रूप में ही ईश्वरीय प्रकाश को अपने अंत:करण में प्रकाशवान होते हुए हम अपने भीतर देख सकते हैं। मान्यताओं को जनसाधारण के अंत:करण में जाग्रत रखना, व्यक्ति को कर्त्तव्यपरायण, आदर्शवादी और सुविकसित व्यक्तित्व का बनाए रहना मंदिरों का उद्देश्य है। प्राचीनकाल में जब उनका निर्माण आरंभ किया गया था, तब ऋषियों के मस्तिष्क में एक ही प्रयोजन था कि इन धर्म संस्थाओं के माध्यम से जनमानस में धर्मधारणा का जागरण एवं अभिवर्द्धन होता रहे।

प्राचीनकाल में मंदिरों में देव–पूजन मात्र ही नहीं होता था वरन वे समस्त रचनात्मक प्रवृत्तियाँ भी

पलती थीं जो जन-कल्याण के लिए आवश्यक थीं। मंदिर एक प्रकाश स्तंभ की तरह होते थे। अपने क्षेत्र में मानवीय उत्कर्ष एवं कल्याण के सभी संभव आयोजन करते रहते थे। पुजारी का, महंत का एकमात्र उद्देश्य जन-जीवन में सत्प्रेरणाएँ उत्पन्न करने के लिए निरंतर प्रयास करते रहना ही था।

रचनात्मक प्रवृत्तियों का केंद्र

छोटी-छोटी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ हर मंदिर में बड़ी आसानी से चलाई जा सकती हैं। प्रौढ़ पाठशाला चलाया जाना वहाँ बिलकुल भी कठिन नहीं है। महिलाएँ आमतौर से मध्याह्न के भोजन आदि गृह-कार्यों से निवृत्त होकर दो बजे तक घर से छुट्टी पा जाती हैं। रात्रि में भोजन बनाने का क्रम उन्हें प्रायः ५ बजे से आरंभ करना पड़ता है, इन तीन घंटों में महिलाओं की प्रौढ़ पाठशाला चले और वयस्क महिलाएँ अपनी पढ़ाई आरंभ करें। वे धीरे-धीरे एक-एक बार एक कक्षा पार करती हुई मैट्रिक तक की पढ़ाई उसी क्रम से बड़ी आसानी के साथ तीन-

चार वर्ष में पूरी कर सकती हैं। हमारी निगाह में ऐसी सैकड़ों महिलाओं के उदाहरण हैं जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर लगभग चार वर्ष में ही मैट्रिक पास कर लिया, जबकि वे आरंभ में बिलकुल निरक्षर थीं। उस शिक्षा में स्कूली पाठ्यक्रम के साथ-साथ एक विषय जीवन निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण का भी रहे जिससे उन्हें मनुष्य जीवन का उद्देश्य समझने और उसे उपलब्ध करने का प्रकाश एवं मार्गदर्शन भी प्राप्त होता रहे। जहाँ यह क्रम चल पड़ेगा, वहाँ उस मंदिर द्वारा समाज की बड़ी सेवा होगी।

विद्या और ज्ञान का प्रकाश

हरेक मंदिर में एक पुस्तकालय आसानी से चल सकता है। स्थान की इसके लिए वहाँ कमी है ही नहीं, जहाँ कुछ कमी हो वहाँ एक-दो अलमारियों की व्यवस्था बड़ी आसानी से बन सकती है। उत्तम प्रेरणाप्रद, जीवन-विकास में सहायता करने वाली पुस्तकें ही वहाँ रहें। जैसे शुद्ध दूध में एक

बूँद विष या घृणित वस्तु डाल दी जाए तो वह सारा ही अशुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार अश्लील, वासनाएँ भड़कने वाली, ऊट-पटांग, भ्रम-जंजाल उत्पन्न करने वाली पुस्तकें भी पुस्तकालय का उद्‌देश्य ही नष्ट नहीं करतीं वरन उलटी घातक सिद्ध होती हैं। इसलिए उस पुस्तकालय में भले ही थोड़ी पुस्तकें हों, पर हों सभी चुनी हुई, एक से अधिक प्रेरणाप्रद, सुलझे हुए विचारों की। आरंभ में मंदिर के समीपवर्ती क्षेत्र के सुशिक्षित सत्पुरुषों से दान या उधार के रूप में ऐसी पुस्तकें माँगी जा सकती हैं। दो-तीन व्यक्ति योजना बनाकर निकल पड़ें और उस क्षेत्र के सुशिक्षितों के पास घूमा जाए तो बहुत सी पुस्तकें इसी प्रकार इकट्‌ठी कर सकते हैं। पाँच रुपए महीने का बजट भी इस कार्य के लिए रखा जाए तो अच्छी पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ मँगाने का एक ढर्रा आसानी से बन सकता है और एक छोटा सा ज्ञानमंदिर पुस्तकालय भी उस मंदिर के साथ-साथ ही चलने लग सकता है।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य

महिलाओं और पुरुषों की प्रौढ़ पाठशालाएँ, प्रेरणाप्रद साहित्य का पुस्तकालय—ये दोनों प्रवृत्तियाँ जिन मंदिरों में नियमित रूप से चल पड़ें तो समझना चाहिए कि उसकी सार्थकता में चार चाँद लग गए। योगासन, प्राणायाम, सूर्य-नमस्कार, ड्रिल जैसी छोटी शारीरिक उत्थान की प्रक्रियाएँ आसानी से चल सकती हैं।

जहाँ व्यायामशालाओं के लिए सुविधाजनक स्थान हो, वहाँ नवयुवकों के लिए अखाड़े तथा दूसरे उपकरण बनाए जा सकते हैं। कुछ मंदिर तो पूजा करने जितनी जगह में ही बने होते हैं, उनमें तो नहीं पर जो नगर से थोड़े हटकर हैं, जिनमें छोटा बगीचा है, वहाँ व्यायामशालाएँ बड़ी सफलतापूर्वक चल सकती हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा बहुत सरल है। उसके सिद्धांतों की जानकारी तथा चिकित्सा की विधि बहुत ही आसानी से सीखी जा सकती है। 'टब' आदि उपकरण भी बहुत महँगे नहीं हैं, उनकी व्यवस्था कर

सकना किसी के लिए भी कुछ कठिन नहीं है। केवल थोड़ी दिलचस्पी और मेहनत की जरूरत है। पुजारी जी या कोई और सेवाभावी व्यक्ति दो-तीन घंटे समय रोज इसके लिए लगा दिया करें तो देखते-देखते एक छोटा निःशुल्क प्राकृतिक चिकित्सालय चल सकता है। चिकित्सा कराते समय रोगी आरोग्यशास्त्र के सिद्धांतों को सीखते-सुनते भी रह सकते हैं और यदि वे उन्हें अपनाने को तैयार हो जाएँ तो उस बीमारी से तो छूटेगा ही वरन भविष्य में कभी भी बीमार न पड़ने का लाभ लेकर जाएगा।

जहाँ प्राकृतिक चिकित्सा भी न बन पड़े, वहाँ फर्स्ट एड के सामान्य उपकरण रखे जा सकते हैं और घरेलू चिकित्सा के उपयुक्त छोटी-छोटी बीमारियों की बिना खतरे वाली दवाएँ रखी जा सकती हैं। इनसे कितने ही लोग सामयिक लाभ उठाते रह सकते हैं और यह छोटा सा चिकित्सालय किसी कदर अपनी उपयोगिता द्वारा लोकसेवा का कुछ प्रयोजन सिद्ध कर सकता है। स्वास्थ्य शिक्षा

संबंधी कक्षाएँ भी इस विभाग द्वारा चलाई जा सकती हैं।

सुधार की नितांत आवश्यकता

यह थोड़े से सुझाव हैं जो पिछली पंक्तियों में व्यक्त किए गए हैं। जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ उस प्रकार की योजना-व्यवस्था बनाई जा सकती है। मूल बात इतनी ही ध्यान रखने की है कि चारित्रिक, भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक विकास के लिए मंदिरों की इमारत, पूँजी एवं जनशक्ति को निरर्थक न पड़ा रहने दिया जाए। निरर्थकता से सड़न और विकृति पैदा होती है। जहाँ गतिशीलता है, वहाँ जीवन है। धार्मिकता को जीवित रखना हो तो मंदिरों को भी जीवित ही रखना चाहिए। जहाँ ऐसी गतिशीलता होगी, वहाँ सशक्तता बनी रहेगी। सशक्तता के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है। यदि मंदिरों के द्वारा लोकसेवा की प्रवृत्तियों को बढ़ाया जाता रहे तो उससे उनका गौरव ही बढ़ेगा। आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांतिः ॥

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

यह सत्संकल्प सभी आत्मनिर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण के साधकों को नियमित पढ़ते रहना चाहिए। इस संकल्प के सूत्रों को अपने व्यक्तित्व में ढालने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इन सूत्रों की व्याख्या 'इक्कीसवीं सदी का संविधान' पुस्तक में पढ़ें।

- ✧ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ✧ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ✧ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ✧ इंद्रियसंयम, अर्थसंयम, समयसंयम और विचार-संयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ✧ अपने आप को समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।

- ✧ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ✧ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ✧ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- ✧ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ✧ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- ✧ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ✧ नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- ✧ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य-प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।

- ✧ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- ✧ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- ✧ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- ✧ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ✧ 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा, हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

❑

सद्वाक्य

* शालीनता बिना मोल मिलती है, पर उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है।
* परमेश्वर का प्यार केवल सदाचारी और कर्त्तव्यपरायणों के लिए सुरक्षित है।
* दूसरों के साथ वैसी ही उदारता बरतो, जैसी ईश्वर ने तुम्हारे साथ बरती है।
* कुकर्मी से बढ़कर अभागा कोई नहीं, क्योंकि विपत्ति में उसका कोई साथी नहीं।
* अपने को मनुष्य बनाने का प्रयत्न करो तो हर काम में सफल होगे।

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)